भारतीय शिक्षा प्रबंधन में भटकाव : एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ0 अमित कुमार

सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, मान्यवर कांशीराम राजकीय महाविद्यालय, फर्रूखाबाद (उ.प्र.)

सारांश

जब संसार की समस्त जातियां पशुवत जीवन व्यतीत कर रही थी तब भारत में सभ्यता एवं संस्कृति का विकास हो चुका था। संसार के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ वेद हमारी सभ्यता व संस्कृति के स्रोत के रूप में हमारे भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान का आधार रहे हैं। इन्हीं ग्रन्थों में सुदृढ़ एवं उन्नत शिक्षा प्रबन्धन की झलक प्राप्त होती है। वैश्वीकरण एवं आधुनिकता की दौड़ में स्वयं की उपस्थिति सुनिश्चित करने हेतु देश के शैक्षिक प्रशासन ने पाश्चात्य जगत का अन्धानुकरण प्रारम्भ कर दिया परिणाम स्वरूप शिक्षा प्रबन्धन में अनेक प्रकार के भटकाव परिलक्षित होने लगे क्योंकि देश की वर्तमान संस्थितियां अन्तर्राष्ट्रीय चुनौतियों के लिये तैयार नहीं थी। अतः वर्तमान शैक्षिक प्रबन्धन का यह दायित्व है कि राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय भावी चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध भौतिक व मानवीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुये भावी नागरिकों को तैयार करें, ताकि वे राष्ट्रीय विकास में अपनी अपेक्षित भूमिका प्रभावी ढंग से निष्पादित कर सकें।

संकेत शब्द *– शिक्षा प्रबंधन, शिक्षा प्रशासन*

प्रस्तावना :–

मानव के स्वयं के विकास के साथ–साथ ही उसके संगठन तथा प्रबन्धन की अवधारणा जुड़ी है। शिक्षा प्रबन्धन का मुख्य कार्य अधिकतम् उपलब्धि करके राष्ट्र तथा समाज का विकास करना है। वर्तमान की जड़ अतीत में होती है। भारत का अतीत अत्यन्त गौरवशाली रहा है। प्राचीन भारत का निर्माण राजनैतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक क्षेत्र में न होकर धर्म के क्षेत्र में हुआ था। भारतीय संस्कृति धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत थी हमारे पूर्वजों ने जीवन को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखा और ''सर्व भूते हित रता'' होना ही अपना कर्तव्य समझा। भारत ने भारतीयता का ही विकास नहीं किया उसने चिर मानव को जन्म दिया और मानवता का विकास करना ही उसकी सभ्यता का एक मात्र उद्देश्य रहा। प्राचीन भारत में शिक्षा एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रबन्धन का प्रारम्भ अतीत के उस युग में हो चुका था, जिस समय विश्व के अनेक भागों में निवासी जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन भी कठिनाई से जुटा पाते थे। भारत के प्राचीन शिक्षा प्रबन्धन में व्यावहारिकता की प्रमुखता थी। प्रबन्धन इतना जटिल नहीं था, शिक्षा प्रबन्धन गुरूकुलों और मठों में होता था, गुरू शिष्य सम्बन्ध मधुर थे, गुरू अपने शिष्यों के लिये त्याग की भावना रखते थे। अब न तो वह गुरू रह गये न वह शिष्य और न वह गुरू शिष्य सम्बन्ध। यह सभी समस्यायें कहीं न कहीं भारतीय शिक्षा को प्रभावित कर रही है। शिक्षा वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिये अनिवार्य तत्व है, इस तथ्य को प्राचीन भारतीयों ने भली भांति समझा और इसी कारण सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही भारत में शिक्षा के प्रबन्धन की उचित व्यवस्था की गयी। यह शिक्षा प्रणाली किसी विदेशी शिक्षा प्रणाली पर आधारित नहीं थी अपितु भारत की अपनी मौलिक शिक्षा प्रणाली थी, जिसमें भारतीयता पूर्ण रूपेण प्रतिबिम्बित होती थी।

किसी देश की शिक्षा की सुदृढ़ व्यवस्था के लिये प्रशासकीय एवं प्रबन्धकीय व्यवस्था पूर्ण रूपेण उत्तरदायी है। यही कारण है कि भारत में शिक्षा प्रबन्धकीय व्यवस्था की ओर विशेष प्रयास किये जाते रहे हैं। शैक्षिक प्रबन्धन एक अदृश्य कौशल है जो सवोत्कृष्ट परिणामों से स्पष्ट होता है।

जिन विद्यालयों में उत्तम शैक्षिक प्रबन्धन विद्यमान है वहां अनुकूल परिणाम विद्यमान रहते हैं और जहां प्रबन्धन ठीक नहीं है वहां न तो विद्यालय का वातावरण ठीक रहता है और न ही विद्यार्थियों और शिक्षकों की स्थिति अच्छी रहती है इस प्रकार शैक्षिक प्रबन्धन एक महत्वपूर्ण व्यवस्था है। हमारे देश में शैक्षिक प्रबन्धन की महत्ता को प्राचीनकाल में ही समझा गया एवं इसी कारण प्राचीन काल में भी शैक्षिक प्रबन्धन की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट हुआ था एवं अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये थे। स्वतन्त्र भारत में भी इस क्षेत्र में व्यापक प्रगति हुई परन्तु वर्तमान में परम्परागत शिक्षा प्रबन्धन के क्षेत्र में अनेक भटकाव परिलक्षित हो रहे हैं, जिनके मूल में निम्नांकित कारण हो सकते हैं :–

शिक्षा का व्यावसायीकरण :

वर्तमान समय में प्रत्येक क्षेत्र में व्यावसायी करण हो रहा है जिसमें से शिक्षा भी एक है। शिक्षा क्षेत्र में पिछले 25 वर्षों में तीव्रता के साथ व्यावसायीकरण हुआ है। आज शिक्षा संस्थाओं का उद्देश्य उत्तम नागरिक निर्माण एवं देश सेवा न होकर प्रत्यक्ष व्यवसाय बन गया है। तेजी से व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की तरह खुलते हुये शिक्षा संस्थान इसका उदाहरण है। इन संस्थानों में मोटी फीस देकर छात्र डिग्री खरीदते हैं फिर उसी तेजी के साथ पैसा कमाना भी चाहते हैं। आज की शिक्षा व्यवस्था गुणवत्ता एवं संस्थागत निष्पादन केन्द्रित न होकर केवल मुद्रा केन्द्रित ही गयी है। जिसके फलस्वरूप शिक्षा की गुणवत्ता, उद्देश्य एवं पूरी व्यवस्था प्रभावित होती है जो शिक्षा प्रशासन एवं प्रबन्धन में भटकाव को प्रदर्शित करता रहता है।

शिक्षा संस्थाओं से समाज की बदलती अपेक्षायें :

हमारे देश में शिक्षा व्यवसाय से यह अपेक्षा की जाती रही है कि वह बालक का सर्वांगीण विकास करे, नैतिक मूल्यों की शिक्षा दे एवं आदर्श नागरिक बनाये। परन्तु वर्तमान में समाज की अपेक्षायें बदल रही है। अब समाज का हर व्यक्ति चाहता है कि शिक्षा संस्था में उसके बालक को समस्त सुविधायें प्राप्त हों एवं तुरन्त नौकरी भी मिले और वह ज्यादा से ज्यादा धनार्जन करे परन्तु प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में ऐसा नहीं था बच्चा गुरू के साथ रहता था तथा अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का त्याग करता था परन्तु आज का विद्यार्थी शिक्षा के साथ सभी भौतिक सुख–सुविधायें भी प्राप्त करना चाहता है। अब बालक की शिक्षा को सीधे अर्थ से जोड़कर देखा जाता है एवं अपेक्षा की जाती है कि बालक को ऐसी शिक्षा दी जाये कि वह कम से कम समय में आर्थिक निर्भरता प्राप्त करे। इन बदलती हुई अपेक्षाओं के साथ शिक्षा प्रबन्धन की प्रक्रियायें भी बदल रही है। आज वही प्रबन्धन अच्छा माना जाता है कि जहां शिक्षकों और छात्रों के लिये समस्त सुविधायें उपलबध हों। ऐसी स्थिति में शिक्षा प्रबन्धन के क्षेत्र में भटकाव परिलक्षित होना स्वाभाविक है।

प्रशासन एवं प्रबन्धन के कार्यों को न समझना :

प्रायः लोग प्रशासन एवं प्रबन्धन को एक ही प्रक्रिया के रूप में देखते हैं परन्तु प्रशासन एवं प्रबन्धन में पर्याप्त अन्तर है। किसी भी संगठन को सुचारू रूप से चलाने के लिये प्रशासन की आवश्यकता होती है। सामान्यता देखा जाये तो सभी संस्थायें चाहे वह परिवार हो, विद्यालय हो, धार्मिक संगठन हो या व्यावसायिक संगठन हो सभी कुछ नियमों के आधार पर कुछ लोगों द्वारा चलाये जाते हैं और इसी चलाने तथा आगे बढ़ाने की प्रक्रिया को प्रशासन कहा जाता है जिनके अन्तर्गत शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये नियोजित व्यक्ति (प्रशासक) सुव्यवस्थित रूप से उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुये सहयोगपूर्ण कार्य करता है। दूसरी ओर प्रबन्धन वह निष्पादन कृत्य शीलता है जिसका सम्बन्ध प्रशासकों द्वारा निर्धारित प्रशासकीय नीतियों को कार्यान्वित करने से है। प्रबन्धन भविष्य की प्रतीक्षा नहीं करता बल्कि भविष्य बनाता है।

प्रबन्धन मात्र दिशा निर्देशन करना ही नहीं है बल्कि कर्मचारी वर्ग को विकसित करना भी है जबकि प्रशासन का कार्य है शिक्षा विकास के लिये नीतियां एवं योजनाएं आदि बनाना और प्रबन्धन का कार्य है कि क्षेत्र में जाकर उन नीतियों एवं योजनाओं को लागू करना एवं उन पर कार्य करना तथा उनकी सफलता को सुनिश्चित करना जिससे की गुणवत्तापूर्व संस्थागत निष्पादन प्राप्त हो। वर्तमान व्यवस्था में प्रायः परिलक्षित होता है कि प्रबन्धक वर्ग स्वयं को प्रशासक समझने लगता है एवं क्षेत्र में जाकर कार्य करना उन्हें हीन प्रतीत होता है। परन्तु प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में ऐसी कोई समस्या नहीं थी।

सूचना एवं संचार क्रान्ति :

वर्तमान युग सूचना एवं संचार क्रांति का युग है। तेजी से सूचनाओं का आदान प्रदान, प्रत्येक जानकारी तक आम जनता की पहुँच इस युग की एक सामान्य सी बात है। शिक्षा के क्षेत्र में इस संचार क्रांति का सबसे ज्यादा प्रभाव शिक्षा प्रबन्धन और गुरू शिष्य सम्बन्धों पर पड़ा है। प्राचीन भारतीय शिक्षा में गुरू, शिष्य के समक्ष उत्तम आदर्श प्रस्तुत करते थे तथा शिष्य सूचनाओं एवं जानकारियों के लिये गुरूओं पर आश्रित रहते थे। परन्तु वर्तमान में जब प्रत्येक जानकारी छात्रों के लिये कम्प्यूटर, इन्टरनेट, टेलीविजन आदि के माध्यम से सुलभ हो तो गुरूओं की आवश्यकता एवं भूमिका पर प्रश्न उठने लगे हैं। अब जब संचार एवं सूचना की सुलभता की वजह से गुरू शिष्य सम्बन्ध कमजोर पड़ने लगे हैं तो भटकाव आना स्वाभाविक है। अतः शिक्षा प्रबन्धन का यह कार्य है कि शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार से प्रबन्धन किया जाये कि इसमें भटकाव उत्पन्न ही न होने पाये।

शिक्षा सेवा नहीं धनार्जन का साधन :

प्राचीन कालीन भारतीय शिक्षा सेवा प्रधान थी। शिक्षा में समाज की सेवा करने का भाव निहित था परन्तु वर्तमान में यह भावना पूर्ण रूप से लुप्त हो गयी है। आज शिक्षा सेवा नहीं धनार्जन का साधन है क्योंकि धन की समाज में बड़ी प्रतिष्ठा है। आज ज्ञान, ज्ञान के लिये धनार्जन के लिये हैं। आज ज्ञान प्राप्त करने के लिये या सेवा भावना से इस क्षेत्र में धन खर्च नहीं किया जाता बल्कि धन का निवेश किया जाता है अधिक से अधिक धन लाभ प्राप्त करने के लिये।

उपभोक्तावादी संस्कृति :

प्राचीन भारतीय संस्कृति देने (To Surve) की थी। गुरू, शिष्य एवं शिक्षा संस्थायें अपनी शिक्षा द्वारा समाज को देश को मनुष्य जाति को कुछ देना चाहते थे। गुरू शिष्य दोनो त्याग करते थे परन्तु आज शिक्षा उपभोग की वस्तु बन गयी है। आज बालक ऐसी शिक्षा प्राप्त करना चाहता है जिसमें उन्हें शीघ्र उपभोग की वस्तुओं की प्राप्ति हो। समाज शिक्षा को एक व्यापार के दृष्टिकोण से देखता है। एवं शिक्षा के उद्देश्यों एवं नैतिक मूल्यों में बदलाव आया है जिसके कारण शिक्षा प्रबन्धन में भटकाव आना स्वाभाविक है।

शिक्षा क्षेत्र में बढ़ती हुई प्रतियोगिता :

भारतीय शिक्षा प्रबन्धन में भटकाव का एक प्रमुख यह भी है कि प्राचीन काल में इस क्षेत्र में इतनी प्रतियोगिता (Comptition) नहीं थी वर्तमान में सभी क्षेत्रों में प्रतियोगिता है। एक दूसरे से आगे निकलने की होड लगी है फिर आगे निकलने के लिये कोई भी तरीका क्यों न अपनाना पड़े। शिक्षा क्षेत्र में प्रतियोगिता का स्वस्थ स्वरूप हो, निर्माणकारी हो, सभी के लिये कल्याणकारी हो, तो प्रतियोगिता का होना आवश्यक एवं लाभकारी है। परन्तु वर्तमान में प्रतियोगिता का अर्थ केवल स्वार्थ पूर्ति एवं अपने लाभ के लिये दूसरों के अधिकारों का हनन् मात्र रह गया है।

भौतिकतावादी दृष्टिकोण :

वर्तमान युग भौतिकतावादी युग है। लोग भौतिकता के पथ पर इतने आबद्ध हो गये है कि पाश्चात्य संस्कृति को आंखे बन्द करके, बिना उस पर विचार किये अपनाते जा रहे हैं। हम West की संस्कृति के Best गुणों को न अपनाकर Waste गुणों को अपनाते जा रहे हैं। आज वहीं प्रबन्धन अच्छा माना जाता है जहां शिक्षकों उवं छात्रों के लिये समस्त सुख–सुविधायें और तकनीकी उपलब्ध हो। अब बच्चों में मूल्यों के विकास पर नहीं बल्कि ऐसे कौशलों के विकास पर बल दिया जा रहा है। जो कौशल उन्हें भौतिकतावादी सभ्यता में ऊपर ले जा सकें इसका कारण है कि समाज उन्हीं लोगों की ज्यादा महत्व दे रहा है। जिनके पास भौतिक सुख–सुविधायें हीं एवं धनी और शक्तिशाली हो। इसी भौतिकतावादी दृष्टिकोण के कारण ही विद्यालयों की संकल्पना में भी परिवर्तन हुआ है।

नैतिक मूल्यों का ह्रयास :

मूल्य का शाब्दिक अर्थ है– उपयोगिता, वांछनीयता, महत्व। सामान्यतः किसी समाज में जिन आदर्शो को महत्व दिया जाता है और जिनसे उस समाज के व्यक्तियों का व्यवहार निर्देशित एवं नियंत्रित होता है, उन्हें उस समाज के मूल्य कहते हैं। आज मूल्य परक अवधारणा में बदलाव आ रहा है। आधुनिक भारतीय समाज का स्वरूप प्राचीन भारतीय समाज से कई अर्थों में भिन्न दिखाई पड़ता है। पुराने भारतीय मूल्य लुप्त हो रहे हैं। सांसारिक चमक–दमक को प्राप्त करने के लिये व्यक्ति कुछ भी करने को तैयार है हमारी मान्यतायें, परम्परायें, और प्राथमिकतायें बदल रही है। हमने आध्यात्मिकता के महत्व को नकारा है और पाश्चात्य जगत के जीवन मूल्यों तथा उनकी भौतिकतावादी सभ्यता को अपनाते जा रहें हैं।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **ग्रेशम** का नियम है *''खोटा सिक्का, अच्छे सिक्के को चलन से बाहर कर देता है।''* हमारे मूल्यों पर **ग्रेशम** का नियम पूरी तरह से लागू होता है।

उपर्युक्त कारणों पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा प्रबन्धन में भटकाव इन्हीं कारणों के कारण परिलक्षित हो रहे हैं अतः अब इनके निवारण के उपायों पर चर्चा करेंगे।

निराकरण के उपाय :

शिक्षा प्रबन्धन का मुख्य लक्ष्य है गुणवत्तापूर्व संस्थागत निष्पादन। परम्परागत भारतीय शिक्षा प्रबन्धन में भटकावों की स्थिति पर दृष्टिपात करने पर उनके निराकरण के उपाय स्वतः परिलक्षित हो जाते हैं। समाज को व्यवस्थित रखने के लिये योजनाबद्ध शिक्षा की आवश्यकता है किन्तु ऐसा होना अत्यन्त दुस्कर कार्य है परन्तु असम्भव नहीं। इसके लिये सबसे पहले शिक्षा प्रबन्धन से जुगाड़ तकनीकी को बाहर निकालना होगा जो वर्तमान में भौतिकतावादी वैश्वीकरण, पश्चिमीकरण आदि का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है, विज्ञान और तकनीकी का विकास तीव्र गति से ही रहा है संचार के साधन सुलभ हो रहे हैं एवं देश विदेश की संस्कृतियाँ आपस में मिल रही हैं। जिनसे बचा तो नहीं जा सकता एवं विश्व में अपनी प्रभावपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराने के लिये यह आवश्यक भी है। अब यह सभी कारक हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में भटकाव उत्पन्न न करे यहीं पर शिक्षा प्रबन्धन का कार्य महत्वपूर्ण हो जाता है। शिक्षा प्रबन्धन में आवश्यक है कि इस प्रकार से सभी का प्रबन्धन करे कि हम इन सभी कारकों का उपयोग करें परन्तु उनको अपनी प्राचीन संस्कृति पर हावी न होने दें।

भौतिकतावादी चमक–दमक में लोग अपने मूल्यों को भूले जा रहे हैं ऐसे में जरूरी है कि शिक्षा प्रबन्धन इस प्रकार से किया जाये कि हम इनका उपयोग करते हुये भारतीय मूल्यों ओर संस्कृति को बढ़ावा दे सकें। इसके लिये शिक्षा प्रबन्धन सेवा कार्य के रूप में तथा सेवा भाव से किया जाये। शिक्षक एवं आदर्शों का पालन करते हुय आदर्श प्रस्तुत करें। पाठ्यक्रम में ऐसे अंशों को जोड़ा जाये जो अपनी संस्कृति से

सम्बन्धित हो एवं नैतिक मूल्यों की शिक्षा अनिवार्य रूप से शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर दी जाये। पश्चिमी संस्कृति की अच्छाइयों को जानें, समझे पर अपनी संस्कृति का त्याग न करें एवं उपभोक्तावादी संस्कृति का पूर्ण रूप से त्याग कर दें।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य भारतीय शिक्षा प्रबन्धन के भटकावों पर समस्याओं पर दृष्टिपात करना उनके निराकरण के उपायों पर चर्चा करना है। निष्कर्षतः हम देखे तो शिक्षा प्रबन्धन की समस्याओं की वृद्धि का प्रमुख कारण आधुनिकता का बढ़ता हुआ प्रभाव है। एवं शिक्षा के एक व्यवसाय के रूप में इंगित किया जा रहा है। गुरू–शिष्य सम्बन्धों में बदलाव आ रहा है एवं शिक्षा का परम्परागत स्वरूप परिवर्तित हो रहा है।

अतः शिक्षा प्रबन्धकों एवं प्रशासकों का प्रशिक्षित एवं प्रबन्धन कौशलों में दक्ष होना अपेक्षित है। वर्तमान समय की प्रमुख आवश्यकता है कि शिक्षा को सेवा भाव से देखा जाये न कि धनोपार्जन के साधन के रूप में। अतः शिक्षा प्रबन्धन एवं प्रशासन से जुड़े लोगों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे प्रबन्धन एवं प्रशासन की पृथक–पृथक कार्यों एवं संस्थितियों को समझें एवं प्रत्येक स्तर की कार्मिक अपना कार्य पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से करें तथा उनके प्रत्येक कार्य संस्थागत उद्देश्यों संस्थागत निष्पादन एवं शिक्षा क्षेत्र की उन्नति के लिये हो ।

सन्दर्भ सूची :

सारस्वत, एम0, (2007). *भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामाजिक समस्यायें.* लखनऊ : आलोक प्रकाशन, पृ0 390–395, 402–426.

ओड, एल0के0 (1991). *शैक्षिक प्रकाशन.* जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृथम संस्करण, पृ0– 3–20, 169–177.

भटनागर, आर0पी0 (2007). *शैक्षिक प्रशासन.* मेरठ : लायल बुक डिपो, पृ0–1–44.

शर्मा, आर0ए0 (2007). *विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन.* मेरठ : आर0 लाल बुक डिपो, पृ0 80–118.

वर्मा, जे0पी0 (2008). *शैक्षिक प्रबन्धन.* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर : चतुर्थ संस्करण, पृ0– 1–16, 94–116.

How to cite reference of this paper-

Kumar, A. (2022). भारतीय शिक्षा प्रबंधन में भटकाव : एक विवेचनात्मक अध्ययन. *Educational Metamorphosis, 1*(1), 39-43.